ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-4* May- 2021
Innovation The Research Concept

वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित पर्यावरण संरक्षण के आयाम

Dimensions of Environmental Protection as Enunciated in Vedic Literature

Paper Submission: 04/05/2021, Date of Acceptance: 20/05/2021, Date of Publication: 24/05/2021

हरकेश बैरवा
सह–आचार्य,
संस्कृत विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

राजमल मालव
सह–आचार्य,
संस्कृत विभाग,
राजकीय कला कन्या
महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान, भारत

सारांश

हमारे वैदिक साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अथाह ज्ञान भरा पड़ा है, आवश्यकता है उसे अवलोकन कर आत्मसात् करने की। हमारे ऋषि – मुनियों ने एकान्त में ध्यान, साधना और तपस्या से प्रकृति ज्ञान अर्जित कर मनुष्य एवं प्रकृति के अन्यान्याश्रित संबंध को गहनरूप से समझा तथा उसे वेद, पुराण, उपनिषद् आदि के माध्यम से जन–जन को समर्पित करके पर्यावरण संरक्षण का पाठ पढ़ाया। भारतीय चिन्तन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना की यहाँ मानव का अस्तित्व रहा, किन्तु आज उसका स्वरूप वर्तमान समय से नितान्त भिन्न होने कारण पर्यावरण प्रदूषण एक विकट समस्या बन गई है, इसी कारण भूकम्प, महामारी, अतिवृष्टि, जीव–जन्तुओं का विनाश तथा नये–नये संक्रामक रोग फेल रहे हैं और यही स्थिति रही तो शीघ्र ही यह पृथ्वी वन एवं वन्य जीवों से रहित हो जायेगी तथा मानव विनाश भी संभावी हो जायेगा। अतः इन सब से निजात पाने के लिए हमें पर्यावरण का संरक्षण करना चाहिए।

Our Vedic literature is full of immense knowledge for environmental protection and promotion, there is a need to observe it and assimilate it. Our sages and sages acquired knowledge of nature through meditation, meditation and penance in solitude, deeply understood the interdependent relationship of man and nature and by dedicating it to the people through Vedas, Puranas, Upanishads etc., taught the lesson of environmental protection. In Indian thought, the concept of environmental protection is as ancient as the existence of human beings here, but today due to its very different form from the present time, environmental pollution has become a formidable problem, that is why earthquakes, epidemics, excessive rains, animals and animals. Destruction and new infectious diseases are failing and if this situation continues, soon this earth will be devoid of forests and wildlife and human destruction will also become possible. Therefore, to get rid of all this, we should protect the environment.

मुख्य शब्द : पर्यावरण, अन्तःकरण, त्रिषप्ताः, सलिलं, संवेदना, मधुरता, देववनस्पते।

Environment, Conscience, Trishapatah, Salilam, Sensibility, Sweetness, Devavanaspate.

प्रस्तावना

वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक प्रदूषण से मनुष्य के मानसिक प्रदूषण को अधिक भयंकर माना है, क्योंकि व्यक्ति का अशुद्ध चिंतन ही समाज व देश में व्याप्त अशान्ति, विद्वेष, ईर्ष्या, संघर्ष, युद्ध, विनाश आदि को जन्म देता है। मानव जीवन में जो कुछ जघन्य, क्रूर और पापमय है वहीं पारिस्थितिक असंतुलन व प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मनुष्य के अन्तःकरण की शुद्धि के मार्ग दर्शन के लिए 'वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित पर्यावरण संरक्षण के आयाम' शीर्षक का चयन किया गया। इस शोध प्रत्र में वैदिक ग्रन्थों में वर्णित उन उपदेशों को उद्घाटित किया गया है जिनको धारण करने से मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल हो जाता है जिससे वह कदापि ऐसा दुष्कृत्य भी नहीं करेगा, जो पर्यावरण तंत्र को प्रदूषित करता हो।

वैदिक एवं लौकिक साहित्य में पर्यावरण शब्द उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेद (1.164.36) एवं अथर्ववेद (9.10.17) में 'परि भुवः परिभवन्ति विश्वतः' शब्द पर्यावरण अर्थ का बोध कराता है। इस पर मंत्रार्थ करते हुए यास्क ने निरुक्त

(14.21) में लिखा है कि महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्राएं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) ये सात योग अविकृत रूप भुवन के कारण है। व्याप्त हुए परमात्मा की आज्ञा में रहकर जगत् को धारण करने की क्रिया में ठहरते हैं तथा बुद्धि युक्त व प्रज्ञा से जगदुपकार की भावना से सब ओर जगत् में चारों ओर व्याप्त है। पदार्थ दो प्रकार के होते हैं एक रूपवाले और दूसरे रूपरहित। आत्मा व परमात्मा रूप रहित हैं और संपूर्ण जगत् एक रूप वाले पदार्थों से युक्त है।

अथर्ववेद में रूपवान् इक्कीस पदार्थों का उल्लेख मिलता है– तीन गुना सात इक्कीस पदार्थ समस्त (रूपाणि) चेतन–अचतेन पदार्थों को धारण करते हुए घूम रहे हैं– ओ३म्! ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वां रूपाणि बिभ्रतः।[1] यहाँ 'त्रिषप्ता' का भाव है कि तीन और सात। तीन से तात्पर्य पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक एवं उनके तीन अधिष्ठाता अग्नि, वायु और सूर्य। प्रकृति के तीन गुण सत्वस्, रजस् और तमस् इन तीन गुणों से होने वाले तीन कार्य सृष्टि, स्थिति और संहार। सप्त से तात्पर्य सात ग्रह, सात मरुद्गण, सात लोक, सात छन्द, सप्तऋषि, सात होता व सात संस्थाएँ या 'त्रिषप्ताः' का अर्थ तीन सत्ते इक्कीस। हमारे वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अथाह ज्ञान भरा पड़ा है, आवश्यकता है उसे अवलोकन कर आत्मसात् करने की।

जल संरक्षण के आयाम

ऋग्वेद (10.129.1–3) में उल्लेख मिलता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में न सत् था, न असत् था, न लोक था, आकाश से परे कुछ नहीं था, न मृत्यु थी, न अमृत था, सूर्य–चन्द्र के अभाव में रात–दिन का ज्ञान भी नहीं था, उस वायु से रहित दशा में एक अकेला वह ही ब्रह्म अपनी शक्ति के साथ प्राण ले रहा था, उससे पर या भिन्न और कोई वस्तु नहीं थी, सब ओर अन्धकार आच्छादित था, उस अज्ञात दशा में सब ओर जल ही जल था। भारतीय समाज में माता को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता है।

वेदों में जल को सम्पूर्ण जगत् की माता के रूप में माना है– आपो अस्मान् मातरः।[2] अथर्ववेद में मनुष्यों को जल का पुत्र कहा है– आपो...अयं वत्स ऋतावरीः।[3] जल को संसार की माता और मानव को उसका पुत्र मानकर भावाभिव्यंजक रूप से वेदों में लिखा है कि जिस प्रकार ममतामयी माताएँ अपने पुत्रों को स्तनों का रस (दुग्ध) पिलाकर पुष्ट करती है, उसी प्रकार हे जलों! तुम्हारा जो परम कल्याणकारी प्रसिद्ध रस अर्थात् सारभूत अंश को हम पुत्रों को प्रदान करो–

यो वः शिवतमो रसस्तस्यं भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।[4]

ऋग्वेद के ऋषि मेघातिथि काण्व ने लिखा है कि हे मनुष्यों ! अमृततुल्य और औषध गुणकारी जल का सदुपयोग करने वाले बनो तथा उसकी प्रशंसा एवं स्तुति करने के लिए सदैव तत्पर रहो–

अप्स्वऽन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः।[5]

इस मंत्र का तात्पर्य है कि जल का जीवन में कितना महत्त्व है, इसलिए व्यक्ति जल को व्यर्थ खर्च न करे, उसे दूषित न करे, उसे सुरक्षित रखे और उसके प्रति सम्मान एवं कृतज्ञता की भावना रखे।

प्रकृति के समस्त घटकों में जल अमूल्य निधि है, जिससे मानव ही नहीं समस्त प्राणी जीवन धारण करते हैं। हेमाद्रि का मत है कि समस्त जीवों को प्राणधारण कराने वाला जल ही हैं– सलिलं यः प्रयच्छेत जीवानां प्राणधारणम्।[6] उक्त कथन का भाव है कि 'जल ही जीवन है' इसकी पवित्रता एवं उपयोगिता को समझकर उचित उपभोग करे जिससे वर्तमान में जल संकट के बढ़ते खतरे को कुछ हद तक कम किया जा सके। यदि वर्तमान का मानव जल की शुद्धता एवं उसकी उपयोगिता का ध्यान नहीं रखेगा तो, एक दिन ऐसा आयेगा जिससे सबका जीवन संकट में पड़ जायेगा।

पृथ्वी संरक्षण के आयाम

प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत पृथ्वी पंचमहाभूतों में से एक अतिमहत्त्वपूर्ण संसाधन है जो किसी भी देश की अमूल्य सम्पदा मानी जाती है, जिस पर जैविक तत्त्वों का अस्तित्व और मानव के विकास एवं प्रगति के विभिन्न क्रियाकलाप निर्भर करते हैं। इसके अभाव में समस्त जीवों के जीवन का अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकतीं, लेकिन यह अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि तथाकथित आधुनिक मानव स्वार्थ में अंधा होकर अवैज्ञानिक एवं अमर्यादित मतलबी क्रिया–कलापों से इसकी सौंधी महक और मूल्यवान संरचना को प्रायः नष्ट करता हुआ अमृतप्रदायी धरा को विष में डुबो रहा है, जिससे समस्त जन इसका खामियाजा भुगत रहा है। अतः इसके संरक्षण के लिए आम नागरिक को सजग रहकर करना होगा, तभी इसकी सौंधी महक बनी रहेगी।

अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त पर्यावरण चेतना से ओत–प्रोत है, इसमें मानवीय सम्बन्ध, पृथ्वी के प्रति आत्मीयता, संवेदना, कर्त्तव्य, रक्षा आदि का संदेश विद्यमान है। ऋषि अथर्वा ने लिखा है कि हे भूमि ! तेरा जो कोई भाग मैं खोदू वह पुनः शीघ्र उग आवे। हे खोजने योग्य पृथ्वी ! मैं तेरे मर्मस्थानों और हृदय को कभी पीड़ित एवं विनाश न करूँ–

यत्ते भूमे विखनामि क्षिपं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।[7]

इस मंत्र में पृथ्वी की सुरक्षा के लिए संवेदना व्यक्त की गई है कि पृथ्वी से उतना ही ग्रहण करना चाहिए, जिसकी क्षतिपूर्ति पुनः शीघ्र हो सके। इसके मर्मस्थल एवं हृदय को कष्ट न पहुँचाने से तात्पर्य है कि गहराई तक उसे क्षति न पहुँचाना। मंत्र रचना के समय न तो मानव भौतिक सम्पन्नता में विश्वास रखता था न ही औद्योगिक क्रान्ति में अग्रसर होना चाहता था, फिर भी पृथ्वी के लिए उतनी सहानुभूति, संवेदना और मार्मिकता विद्यमान थी। जबकि आज के मानव ने वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति के लिए इस पृथ्वी का निर्ममता से दोहन करके इसके मर्म को विदीर्ण कर दिया, तथापि इसके कष्ट और विनाश की संवेदनहीन मानव को तनिक भी कोई चिन्ता नहीं है।

यह सर्वविदित है कि पृथ्वी हमारी रक्षक है, इसलिए हम सबका परम कर्त्तव्य बनता हैं कि उसका संरक्षण करें। वर्तमान संदर्भ में केवल सुरक्षा का कार्य

धन–सम्पत्ति को ही माना जाता है, जबकि समस्त संसार को अपनी गोद में धारण करने वाली पृथ्वी की सुरक्षा कोई नहीं कर रहा हैं। ऋषि अथर्वा ने लिखा है कि सबका भरण–पोषण करने वाली, सम्पत्ति की रक्षा करने वाली, दृढ़ आधारवाली, सुवर्ण को सीने में रखने वाली, गति करने वाली, सुख देने वाली, सबकी हितकारी, अग्नि का पोषण करने वाली एवं इन्द्र को प्रधान बनाने वाली यह पृथ्वी धन बल के बीच हमें सुरक्षित रखती है–

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रति भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु।।[8]

अथर्ववेद के अनुसार जो पृथ्वी के साथ अभद्र व्यवहार एवं अपराध करता है उसका दुष्परिणाम उसे अवश्य मिलता है। जो पृथ्वी को क्षीण या प्रदूषित करते हैं, उन्हें वह उसी प्रकार दण्डित करती है जिस प्रकार अश्व धूल को हिला देता है, वैसे ही हर्षदायिनी, अग्रगामिनी संसार की रक्षाकारिणी, वनस्पतियों और औषधियों की ग्रहण स्थली उन मनुष्यों को हिला देती है, जिन्होंने उसको सताया हैं–

अश्व इव रजो दुधुवे वितान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्।।[9]

इस मंत्र से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी को सताना या उसके स्वरूप को विकृत करने का दुष्परिणाम निश्चित ही भुगतना पड़ता है। दुष्परिणामों का रूप प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, शीघ्र–विलम्ब, कम–अधिक कैसा भी हो सकता हैं। इससे प्रेरणा मिलती है कि अनुचित कार्यों से विपत्ति को आमंत्रित न करके पृथ्वी संरक्षण के लिए सदैव प्रयत्नशील बना रहना चाहिए। ऋषि अथर्वा ने लिखा है कि हे पृथ्वी ! तू बड़ी उपजाऊ होकर मनुष्यों की अखण्डव्रता कामना को पूर्ण करने वाली प्रसिद्ध है जो तेरा न्यून भाग हुआ है उसे सर्वप्रथम नियम उत्पन्न करने वाला परमेश्वर यथावत उस कमी को पूर्ण करें–

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य।।[10]

इस मंत्र का भाव यह है कि पृथ्वी में जो क्षति होती है, उसे प्रजापालक प्रजापति शीघ्र ही पूर्ण करें। पृथ्वी की सम्पूर्णता में ही समस्त पारिस्थितिक सन्तुलन समाविष्ट हैं, तभी तो उसकी पूर्णता के लिए कहा गया है। विचारणीय बात यह है कि क्या आज का मनुष्य पृथ्वी के संदर्भ में ऐसा सोचता है या नहीं ? अतः अथर्ववेद का यह संदर्भ सर्वग्राह्य है जो पृथ्वी संरक्षण के लिए उपयुक्त है।

ऋषि अथर्वा ने कहा है कि यह पृथ्वी माँ है और मैं इसका पुत्र हूँ– माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।[11] पृथ्वी मानव सदृश है उसे हिंसित, पीड़ित या प्रदूषित करना अपराध की श्रेणी में आता है। इसलिए यजुर्वेद में लिखा है कि हे पृथ्वी माता। मैं तुझको विनष्ट न करूँ और तू भी मुझको विनष्ट मत कर– पृथिवी मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम्।[12]

स्पष्ट है कि पृथ्वी द्वारा सबको धारण करने, पोषण करने व सुरक्षा देने के कारण ही उसे माता कहा गया है किन्तु ऋषि ने स्वयं को पुत्र कहा इसके पीछे माता के प्रति पुत्र के समस्त उत्तरदायित्वों के निर्वाह का रहस्य छिपा है। इस कथन को यदि प्रत्येक मानव स्मरण रखे तो पृथ्वी के श्रेष्ठ स्वरूप को बनाए रखने तथा उसकी सुरक्षा में अपना सतत् योगदान दे सकता है।

आकाश शुद्धि के आयाम

'आकाश या अन्तरिक्ष' शब्द का अर्थ द्युलोक और पृथ्वीलोक के बीच का मध्यवर्ती प्रदेश माना है। उस परमपुरुष की शक्ति से ही इस मूल प्रकृति से स्थूल होता हुआ सबसे पहला महाभूत आकाश बना। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में लिखा है कि पंचमहाभूतों में प्रथम जो शब्द गुण वाला माना जाता है वह आकाश है। निरुक्त (14.4) में भी आकाश का गुण शब्द बताया है– आकाशगुणः शब्दः अर्थात् शब्दःगुणो यस्य एवं भूत आकाशः। आकाश का सम्बन्ध कान से है, कान शब्द को सुनता है, शब्द आकाश का विषय है। शब्दों का प्रयोग संयमित होकर करना चाहिए ताकि आकाश में प्रदूषण न हो। यदि आकाश में प्रदूषण हो जायेगा तो इसका प्रतिकूल प्रभाव सारे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय तंत्र पर पड़ेगा। अतः अथर्ववेद में कामना की गयी है कि आकाश मधुरता से भरा रहे–

मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।

इस मंत्र का तात्पर्य है कि मनुष्य को भी मधुमय होकर संसार के पर्यावरण को अनुकूल बनाने का प्रयास करना चाहिए। मानव के जिह्व के अग्रभाग एवं मूल में मधुरता होनी चाहिए जिससे कर्म और चित्त में भी मधुरता बनी रहे। यदि वह वाणी से मीठा बोलेगा तो मधुरता की मूर्ति बन जायेगा। यदि वह वाणी का दुरुपयोग करेगा तो पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। वाणी से कठोर शब्द या बुरी आवाज निकालने से आकाश प्रदूषित होता है। अतएव मानव को कठोर शब्द या बुरी आवाजों से सदैव बचना चाहिए। अनृत और पापवचन पर्यावरण के लिए अमंगलकारी होते हैं।

आकाश एवं वायु अन्योन्याश्रित रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। अथर्ववेद में लिखा है कि वायु आकाश में ठहरा हुआ है, क्योंकि वायु को स्थान देने वाला आकाश विद्यमान है– अन्तरिक्षमुरु वातगोपम्।[13] मानव को सदा वायु को प्रदूषण मुक्त एवं पावन रखना चाहिए, शुद्ध वायु से ही आकाश प्रदूषण रहित होता है और पवित्र आकाश में रहने वाला वायु ही मानव में शुद्धता रखता है। शुद्ध वायु के लिए मानव को यथाविधि यज्ञ करते रहना चाहिए, जिससे आकाश पुष्ट और वायु गतिमान बनी रहे।

आकाशतत्त्व की शुद्धि में यज्ञ–व्यवस्था महत्त्वपूर्ण सघटक माना जाता है। पर्यावरण में परस्पर आदान–प्रदान का जो चक्र बना हुआ है, उसको बनाए रखने का मूलाधार है यथाविधि यज्ञ करना। यज्ञ के द्वारा ही समय–समय पर अग्नि में प्रदत्त आहुतियों के माध्यम से वायुमण्डल का शोधन एवं प्राकृतिक सम्पदाओं का संवर्धन तो होता ही है साथ ही यजमान द्वारा सम्पादित यज्ञ की परिधि में आने वाले मानवों की देहशुद्धि, इन्द्रियशुद्धि, अहंकारशुद्धि, मित्रशुद्धि, पर्यावरणशुद्धि आदि भी होती हैं। यज्ञ से धूम, धूम से वृष्टि, वृष्टि से अन्न, अन्न से जीव और जीव से यज्ञ– यह सुगुम्फित श्रृंखला एक पूर्ण पर्यावरण चक्र को प्रस्तुत करती हैं। गीता में लिखा है कि सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि

से होती है, वृष्टि से यज्ञ और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होता हैं–

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[14]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि यज्ञ स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं यजमान भाव से शुद्धचित्त होकर विधिपूर्वक उचित सामग्री से सम्पन्न करना चाहिए। आदान–प्रदान के इस प्राकृतिक क्रम में नियम पालन एवं निःस्वार्थभाव होना जरुरी है, यदि मनमाना कार्य किया जाय तो समस्त जीवन शृंखला विशृंखल हो जायेगी। यजुर्वेद (5.43) के मन्त्रांश में लिखा है कि आकाश की हिंसा मत करो अथवा आकाश को प्रदूषित मत करो– अन्तरिक्षं मा हिंसीः। इसका तात्पर्य है कि हमें आकाशतत्त्व के संवाहक वायु और शब्दगुण को प्रदूषित नहीं करना चाहिए, क्योंकि आकाश तत्त्व सभी मानव एवं प्राणियों के जीवन के लिए सहायक हैं।

वायु संरक्षण के आयाम

वेदों में पर्यावरण संरक्षण के लिए वायु के महत्व का सर्वाधिक प्रतिपादन किया गया है । वेदों में वायु को प्राण कहा है। वेदों में वायु को शुद्ध बनाए रखने के लिए निर्देश है कि वायु को क्षति पहुंचाने पर वायु सबको क्षति पहुंचा सकता है–वायो यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच यो अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।[15]

वेदों में वायु को शुद्ध करने के लिए यज्ञ का बड़ा महत्व है। यज्ञ करते समय घी को जब हम अग्नि में विधिपूर्वक जलाते हैं, तो वह अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प में बदलकर समस्त वायुमण्डल में विद्यमान विष को नष्ट कर देता है। यजुर्वेद में भी इसी संदर्भ में एक मंत्र द्रष्टव्य है कि यज्ञ से सुगन्धित द्रव्यों का धुआं जब अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है तो वह वहां स्थित प्रदूषण को समाप्त करने में समर्थ होता है, जिससे शुद्धता होती है– अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहताअसुरा रक्षांसि वेदिषदः।[16] ऋग्वेद में यज्ञ के द्वारा रोगरूपी राक्षसों को मारने का उल्लेख मिलता है– घृताहवन दीदिवःप्रतिष्म रिषतो दह। अग्ने त्वं रक्षस्विनः।[17]

वन संरक्षण के आयाम

पर्यावरण को सुरक्षित, संचालित एवं गतिशील बनाये रखने में सघन वनों का आधारभूत योगदान रहता है। इसलिए वनों को प्राकृतिक पर्यावरण का मानव एवं जीव–जन्तुओं के लिए अमूल्य उपहार माना जाता है। वृक्षों का एक खड़ा हुआ समूह जो विभिन्न प्रकार के पादपों से एक साथ संवृत्त सहसंघ बनाता हो, वन कहलाता है। वन एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जिसके संरक्षण से अनेक बहुमूल्य वन उपजें तो मिलती ही है, साथ ही पारिस्थितकीय सन्तुलन भी बना रहता है जो पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवधारियों के लिए परमावश्यक है। अथर्ववेद (8.8.14) में वनस्पति जगत् को चार भागों में विभक्त किया है– वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः। जिसमें पुष्पदर्शन के बिना फलों की उत्पत्ति होती है, उन्हें वनस्पति कहते हैं, जिनमें फूल दिखाई देने के बाद फल लगता हैं, उन्हें वानस्पत्य कहते हैं, फलों के पकने के बाद जो समूल नष्ट हो जाते हैं, उन्हें औषधि कहते हैं तथा जिनके लता और प्रतान फैले हो, उन्हें विरुध कहते है।

पर्यावरण संतुलन के लिए औषधियाँ आवश्यक तत्त्व होने के कारण यजुर्वेद (1.25) में कहा है कि देवयजन स्थलि पृथ्वी! मैं तेरे ऊपर बसी औषधियों के मूल को नष्ट न करूँ– पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलम्मा हिंसिषम्। ऐरम्मद ऋषि ने लिखा है कि वनों को चाहने वाला व्यक्ति उनकी हिंसा कभी नहीं करता– न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।[18]

यजुर्वेद के अनुसार यजमान यज्ञ के लिए लकड़ी काटने पर वृक्ष से प्रार्थना करता हे वृक्षों! मैं यज्ञ के लिए यूप निर्माण की दृष्टि से अन्य वृक्ष को छोड़कर तुम्हारे पास आया हूँ, इसलिए मैं तुम्हें काट रहा हूँ। तुम मेरी रक्षा करना और मुझे पीड़ा मत पहुँचाना। तुम सौ सौ अंकुर से नहीं अपितु सहस्र अंकुरों के साथ फिर से हरे–भरे हो जाना–

तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा
देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः। अयं हि त्वा
स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं
रुहेम।।[19]

इन मंत्रों में वृक्ष को 'देववनस्पते' कहकर संबोधित किया है और काटने के लिए बार–बार क्षमा याचना की गई है। उन्हें इस प्रकार काटा जाता था कि वे पुनः अंकुरित हो जाते थे। इससे स्पष्ट है कि उस काल में वनों के प्रति कितना अत्यधिक आदरभाव रखा जाता था। वृक्षों में मनुष्वत् जीवन है, अतः उनकी रक्षा करना मानव का परमधर्म बनता है। मनुस्मृति मे लिखा हे कि पूर्वजन्म के कर्मों के कारण अत्यधिक तमोगुण से युक्त वृक्षादि वनस्पति अन्तश्चेतना वाले (भीतर से चेतनायुक्त होने पर भी उसे बाहर किसी से प्रकट करने में असमर्थ) एवं सुख–दुःख से युक्त होते हैं–

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः।।[20]

इस श्लोक का तात्पर्य है कि वृक्षों को भी सजीव व चेतन स्वीकार किया गया है, ये मानव के समान अनुभूति करते हैं। जिस प्रकार मानव अनुकूल विषयों के लाभ से सुखी और प्रतिकूल विषयों की प्राप्ति से दुःखी होते हैं, उसी प्रकार वृक्ष भी सम–विषम स्थितियों में सुख–दुःख का अनुभव करते हैं।

शोध का उद्देश्य

पर्यावरण से तात्पर्य किसी भी प्राणी, मानव या समाज के चारों ओर विद्यमान समस्त परिवेश से है। प्राकृतिक पर्यावरण का भावार्थ उन स्थितियों व परिस्थितियों से है जो पूर्णरूप से प्रकृति प्रदत्त हैं। इनके होने में मानव का कोई योगदान नहीं है, यथा पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, वनस्पति, पर्वत, झीलें, नदियाँ आदि। इस शोध का उद्देश्य प्राकृतिक पर्यावरण को शुद्ध रखने का है।

निष्कर्ष

भारतीय चिन्तन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना की यहाँ मानव का अस्तित्व रहा, किन्तु आज उसका स्वरूप वर्तमान समय से नितान्त भिन्न रहा है और यही कारण है वर्तमान युग में पर्यावरण प्रदूषण एक विकट समस्या बनी हुई है। इस

शोध प्रत्र में वैदिक ग्रन्थों में वर्णित उन उपदेशों को उद्घाटित किया गया है जिनको धारण करने से मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल हो जायेगा जिससे वह कदापि ऐसा दुष्कृत्य नहीं करेगा, जिससे पर्यावरण तंत्र को क्षति पहूँचे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अथर्ववेद 1.1.1*
2. *ऋग्वेद 10.17.10, अथर्ववेद 6.51.2*
3. *अथर्ववेद 3.13.7*
4. *ऋग्वेद 10.9.2, यजुर्वेद 11.51, अथर्ववेद 1.5.2*
5. *ऋग्वेद 1.23.19*
6. *हेमाद्रि, दानखण्ड, पृष्ठ 988*
7. *अथर्ववेद 12.1.35*
8. *अथर्ववेद 12.1.6*
9. *यजुर्वेद 10.23*
10. *अथर्ववेद 12.1.57*
11. *अथर्ववेद 12.1.61*
12. *अथर्ववेद 12.1.12*
13. *अथर्ववेद 2.12.1*
14. *श्रीमद्भगवद्गीता 3.14*
15. *अथर्ववेद 2.20.4*
16. *यजुर्वेद 2.29*
17. *ऋग्वेद 1.12.5*
18. *ऋग्वेद 10.146.5*
19. *यजुर्वेद 5.42–43*
20. *मनुस्मृति 1.49*